ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

पंचायती राज : अवधारणात्मक विश्लेषण एवं वैकासिक परिप्रेक्ष्य

चेनाराम (मुंदलिया)
व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय बाँगड़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
डीडवाना, राजस्थान

सारांश

पंचायती राज व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समाज की रीढ़ है। हमारे देश में लगभग आठ लाख गांव है, जिनमें 70 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करके ग्रामीण विकास के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है। पंचायत शब्द संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' शब्द से व्युत्पन्न है। संस्कृत भाषा ग्रन्थों के अनुसार किसी आध्यात्मिक पुरूष सहित पाँच व्यक्तियों के समूह या वर्ग को पंचायत के नाम से संबोधित किया जाता है। भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरूप पंचायती राज व्यवस्था स्वतंत्रता के पश्चात् ही दृष्टिगोचर हुआ, लेकिन इसकी परिकल्पना को स्वतंत्र भारत की उपज कहना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। पंचायती राज की परिकल्पना, स्वरूप एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा आजकल की बात नही अपितु इसका इतिहास वैदिक काल से भी पूर्व का है। परन्तु स्वतंत्र भारत में इसकी शुरूआत 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा की गई। तत्पश्चात 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा मृतप्रायः पंचायती राज को जीवन प्रदान गया किया वहीं संवैधानिक मान्यता दिए जाने की वजह से इनका अस्तित्व भी सुरक्षित हो गया। इस संशोधन से सम्पूर्ण देश में पंचायती राज संस्थाओं में एकरूपता तथा प्रशासनिक अधिकार एवं वित्तीय संसाधनों की प्राप्ति सुनिश्चित हो पायी। वस्तुतः पंचायती राज व्यवस्था ग्राम विकास के लिए आशा की किरण है। यह व्यवस्था वास्तविक अर्थो में तभी सफल व प्रभावी होगी जब गांवों में शिक्षा व साक्षरता की रोशनी फैलेगी, ग्रामीण जन संकीर्ण भावनाओं, तुच्छ स्वार्थो व दलगत राजनीति से ऊपर उठकर व्यापक सोच व चिन्तन को अपनाने हेतु ग्रामों के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करेंगे। ऐसा करके ही गांवों की धुंधली तस्वीर को चमका कर वास्तविक मायनों में एक भारत व श्रेष्ठ भारत तथा स्वच्छ भारत एवं स्वस्थ भारत की धारणा को मूर्त रूप प्रदान किया जाना सम्भव है और तभी विकास का वास्तविक चेहरा सामने आएगा।

मुख्य शब्द : स्थानीय स्वशासन, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, पंचायती राज, 73वां संविधान संशोधन, ग्रामीण विकास, लोकतांत्रिक सहभागिता।

प्रस्तावना

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा का विकास ग्रामीण पुनर्निर्माण के संदर्भ में हुआ है। हमारे देश में लगभग आठ लाख गांव है, जिनमें 70 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इसलिए ग्रामीण स्थानीय स्वशासन का महत्व स्वतःसिद्ध एवं सर्वथा असंदिग्ध है। पंचायत ही लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रथम आधारभूत इकाई है। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करके ग्रामीण विकास के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. पंचायती राज व्यवस्था के अर्थ एवं स्वरूप की जानकारी प्राप्त करना।
2. पंचायती राज के विकास के प्रमुख पड़ाव तथा इसकी आवश्यकता के कारणो का पता लगाना।
3. पंचायती राज की अवधारणा ग्रामीण विकास में कहां तक सफल हुई तथा इसकी कंमियों एवं सुधार के बारे में सुझाव प्रस्तुत करना।

पंचायती राज व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समाज की रीढ़ है। वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण समाज में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास की

प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। पंचायती राज व्यवस्था का मूलभूत लक्ष्य यही है कि गांवों से पुरानी व्यवस्था को परिवर्तित करके एक ऐसे समतामूलक समाज की रचना की जाए जिसमें असमानता, अन्याय व शोषण की लकीरे विद्यमान नहीं हो। समाज के सभी जाति, वर्ग, महिला व पुरूष एवं बालकों के अधिकारों को संरक्षित व सुरक्षित करना संभव हो सके। बेरोजगारी, गरीबी व भुखमरी जैसे दानवों से मुक्त गांव स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के प्रतिबिम्ब हो। इस प्रकार से सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर प्रशस्त गांव ही देश के विकास की वास्तविक तस्वीर के प्रत्यक्ष साक्षी होंगे तथा इस दुष्कर व जटिल कार्य के सम्पादन में पंचायतों की भूमिका सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण साबित होगी।

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज ही वह माध्यम है, जो शासन को सामान्य जन के दरवाजे तक ले जाता है। पंचायती राज की अवधारणा एक व्यापक स्वरूप लिए है। शाब्दिक दृष्टि से पंचायती राज शब्द हिन्दी भाषा के दो शब्दों पंचायत तथा राज से मिलकर बना है। जिसका संयुक्त अर्थ ''पाँच व्यक्तियों के शासन'' से है।

भारत के प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में भी पंचायती शब्द को परिभाषित किया गया है। जिसके अनुसार पंचायत शब्द संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' शब्द से व्युत्पन्न है। संस्कृत भाषा ग्रन्थों के अनुसार किसी आध्यात्मिक पुरुष सहित पाँच व्यक्तियों के समूह या वर्ग को पंचायत के नाम से संबोधित किया जाता है। गांधीजी ने पंचायत का शाब्दिक अर्थ ग्रामवासियों द्वारा चयनित पाँच प्रतिनिधियों की सभा से माना है। आचार्य विनोबा भावे के अनुसार पंचायत का अर्थ पाँच व्यक्तियों की समिति से है। जिसके सदस्य प्रेम, निर्भयता, ज्ञान, उद्योग तथा स्वच्छता के प्रतीक होंगे। वस्तुतः पंचायती राज का अर्थ गाँव एवं अन्य जमीनी स्तर पर लचीले लोकतंत्र की क्रियाशीलता से है।

मूल रूप से लोकतंत्र का विचार हमारे देश में विदेश से आयातित नहीं है तथा आज हमारी गिनती दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में होती है, लेकिन ऐसा समाज जहाँ असमानताएँ अत्यंत तीव्र हैं, लोकतांत्रिक भागीदारी को लिंग, जाति और वर्ग के आधार पर बाधित किया जाता है। भारत के ऐसे गाँवो में पारंपरिक रूप से जातीय पंचायतें रही हैं लेकिन ये हमेशा प्रभुत्वशाली समूहों का ही प्रतिनिधित्व करती रही हैं। इनका दृष्टिकोण प्रायः रूढ़वादी रहा है और ये लगातार लोकतांत्रिक मानदंडों और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विपरीत निर्णय लेते रहे है।

इसी आधार पर भारत में पंचायती राज की संकल्पना एवं स्वरूप को लेकर विद्वानों में एकमतता का अभाव है। विशेषज्ञों के अनुसार पंचायती राज अवधारणा का संबंध राजनीतिक नौकरशाही एवं सामाजिकता से है। उनके मत में पंचायती राज की अवधारणा का अभिप्राय सामुदायिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन मात्र से है। अधिकांश विशेषज्ञ इसका अर्थ यह भी मानते है कि पंचायती राज ग्रामों तक राजनीतिज्ञों के बीच अनुकूलता स्थापित करने के लिए लोकतंत्र का विस्तार मात्र है। जिसका संबंध गांधीवादी समाज, कार्यकर्ताओं, आर्थिक शक्तियों तथा सम्पत्ति के विकेन्द्रीकरण से होना चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पंचायती राज की संकल्पना एवं स्वरूप पर विद्वानों में मत विभिन्नता के बावतूद यह शासन के तीसरे स्तर अथवा ग्रास रूट पर सक्रिय लोकतांत्रिक शासन की आधारभूत इकाईं एवं आत्मा है। जिसे भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की त्रिस्तरीय व्यवस्था के रूप में जाना जाता है।

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरूप पंचायती राज व्यवस्था स्वतंत्रता के पश्चात् ही दृष्टिगोचर हुआ, लेकिन इसकी परिकल्पना को स्वतंत्र भारत की उपज कहना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। पंचायती राज की परिकल्पना, स्वरूप एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा आजकल की बात नही अपितु इसका इतिहास वैदिक काल से भी पूर्व का है। भारत के प्राचीन इतिहास की पृष्ठभूमि के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी पंचायती राज का अस्तित्व था। वैदिक काल से ही ग्राम सभाओं तथा ग्राम पंचायतों का गठन हो चुका था। वेदों मे यह भी माना जाता है कि पाँच व्यक्ति मिलकर यज्ञ को पूर्ण कर सकते हैं

ऋग्वेद काल मे जो ग्राम सभाएं होती थी। उनमें ग्राम के मुखिया को 'ग्रामणी' कहा जाता था। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि सभा कानून बनाने से अधिक न्याय पर विश्वास करते थे। राजा महत्वपूर्ण कार्य सभा के सदस्यों की राय के बिना नहीं करते थे। स्मृतिकाल में मनुस्मृति के अनुसार ग्रामवासियों को ग्रामणी की वृति का प्रबन्ध करना होता था। मनुसंहिता में राजा तथा गांवों के बीच प्रत्यक्ष संबंध का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण एवं महाभारत दोनों ही उच्च कोटि के महाकाव्य है। इनमें हमें ''सभा'' का उल्लेख मिलता है। इस समय शासन की न्यूनतम इकाई ग्राम मानी जाती थी। बौद्ध जातक कथाओं में बौद्धकाल में सुस्थापित पंचायत तंत्र का वर्णन मिलता है। इस काल में भी सभा के प्रधान को ''ग्राम भोजक'' कहा जाता था। मौर्यकाल में ''उपवास'' इन ग्राम सभाओं के सदस्य होते थे। प्रशासन में ग्रामीक, उपवास, ग्रामसंघ, ग्रामसभाएं एवं ग्रामवृद्ध महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थें। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के भाग 3/4 में भी ग्रामीक के पद के बारे में तथा ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख मिलता है।

दक्षिण भारत में चोल सामाज्य की एक प्रमुख विशेषता ग्रामों का स्थानीय शासन व्यवस्था थी। पंचायतों को महासभा कहते थे। जिसका मुखिया 'ग्रामीक' होता था। चोल शासन में आधुनिक निर्वाचित पंचायतों की तरह महासभा के सदस्य ग्रामवासियों द्वारा नियमानुसार निर्वाचित होते थे। इस प्रकार पंचायतों की सुदृढ़ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को नकारा नहीं जा सकता। भारत में प्राचीन समय ही नहीं अपितु मध्यकाल एवं ब्रिटिश शासन काल में भी पंचायतों का स्परूप परिलक्षित होता था। परन्तु इस काल में पंचायती संस्थाओं की उपयोगिता में कमी आई।

सल्तनत एवं मुगलकाल में शासन की सबसे छोटी इकाई गांव ही थे। परन्तु केन्द्रीय शासन ग्रामीण

जीवन के प्रति उदासीन था। इसी प्रकार ब्रिटिश काल में पंचायतों ने अपनी सत्ता गवां दी क्योकि केन्द्रीय ब्रिटिश सरकार ने सारी शक्ति की बागडोर अपने हाथ में ले ली। यद्यपि सामाजिक परिप्रेक्ष्य में गांवों में इसका महत्व अब भी कायम था।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार पर ग्राम पंचायतों की स्थापना हेतु दबाव बनाना शुरू किया तब ब्रिटिश सरकार ने इस संदर्भ में कुछ अधिनियम भी पारित किए। तत्पश्चात गांधीजी ने 1920 में असहयोग आंदोलन के दौरान कहा कि देश की आजादी का अर्थ मात्र राजनीतिक आजादी नहीं, इसका अर्थ शहरी लोगों की आजादी भी नहीं है। वास्तविक आजादी वह होगी जिसमें ग्रामवासियों को अपने भविष्य के निर्माण का स्वामित्व प्राप्त हो। यह उनके स्वशासन के द्वारा ही हो सकता है और इसी का नाम पंचायती राज है।

भारत के संविधान में प्रत्यक्ष रूप से पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना के संदर्भ में कुछ भी नहीं कहा गया है। परन्तु संविधान सभा में होने वाद–विवाद के दौरान के. संथानम के द्वारा दिए गए अतिरिक्त खण्ड के सुझाव को भाग 4 में नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत अनुच्छेद 40 में जोड़ा गया, जिसमें कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।

सन् 1947 में देश स्वतंत्र हुआ और इसके बाद पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास की दिशा में उल्लेखनीय कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में पंचायती राज की स्थापना का प्रयास वास्तविक रूपों में सजीव एवं साकार प्रयास था। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न प्रकल्प तैयार किये गये। योजनाओं को लागू करने के लिए ग्रामीण जनता के सक्रिय सहयोग एवं सहभागिता पर बल दिया गया। 2 अक्टूबर, 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया परन्तु यह कार्यक्रम सरकारी मार्गदर्शन में चला। अतः ग्रामीण जन का सहयोग प्राप्त करने में असफल रहा । इस समस्या के निदान हेतु 1957 में बलवंतराय मेहता के नेत्त्व में एक अध्ययन दल का गठन किया गया। अध्ययन दल ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की सफलता के लिए भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को आवश्यक माना तथा त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया। 1958 में अध्ययन दल के सुझावों को राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा पंचायती राज का शुभारंभ किया। तत्पश्चात भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं के गठन के लिए अधिनियम पारित कर इस व्यवस्था को गति प्रदान की।

पंचायती राज संस्थाओं को ओर अधिक शक्तियां एवं प्राधिकार प्रदान करने के लिए 1964 में सादिक अली समिति का गठन किया गया समिति ने अपने सुझाव में पंचायतों का कार्यकाल 3 वर्ष से बढ़ाकर 4 वर्ष करने का सुझाव दिया। देश में 1964 से 1977 तक का काल पंचायती राज के इतिहास में ठहराव एवं अवनति का काल माना गया है। पंचायती राज संस्थाओं की असफलताओं के कारणों का मूल्यांकन करने के लिए भारत सरकार के मंत्रिमंडल सचिवालय में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में 12 दिसम्बर, 1977 को एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया गया। समिति ने 1978 में अपनी रिपोर्ट में भारत में त्रिस्तरीय पंचायती राज ढ़ांचे के स्थान पर द्विस्तरीय संगठन का सुझाव दिया, जिसे मुख्यमंत्री सम्मेलन, 1979 में नामंजूर कर दिया गया तथा बलवंत राय मेहता समिति की त्रिस्तरीय व्यवस्था को ही जारी रखने का समर्थन किया गया।

पंचायती राज पर बीकानेर सम्मेलन, 1982 में तात्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने पंचायती राज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से विचार करने का सभी से आह्वान किया। सन् 1985 में श्री जी.वी.के. राव समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से जन साधारण की सक्रिय भागीदारी पर जोर दिया। 1986 में एल.एम. सिंघवी की अध्यक्षता में पंचायती राज पर 'कन्सेंट पेपर' तैयार करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने एक समिति गठित की। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को पुनः सक्रिय बनाने तथा जन भागीदारी एवं नियंत्रण की दृष्टि से इसे आवश्यक बताया तथा ग्राम पंचायतों को सशक्त करने के लिए इन्हें 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' की संज्ञा दी। पी.के. थुंगन समिति ने सन् 1988 में ग्राम पंचायतों को और अधिक सक्षम एवं प्रभावी बनाने के लिए अपनी रिपोर्ट में पंचायतों को संविधान में दर्जा देने की बात कही।

पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत करने के लिए सतत् कदम उठाये जाते रहे हैं। इस दिशा में इन समितियों द्वारा दिए गए सुझावों पर कुछ काम भी हुआ, परन्तु निचले स्तर पर सत्ता की भागीदारी की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हुई। क्योंकि इन संस्थाओं में ग्रामीण समाज की ताकतवर जातियों का ही दबदबा रहा। साथ ही पंचायतों का समय पर चुनाव न होना, उन्हें राज्य सरकारों द्वारों बार–बार भंग करना तथा पुनः चुनाव करना या न करना राज्य की सरकारों की इच्छा पर निर्भर होना, पंचायत राज व्यवस्था में जातिगत गुटबंदी, भाई–भतीजावाद की जड़े गहराई तक फैलने के कारण पंचायती राज व्यवस्था निर्जीव अवस्था में पहुंची गई। परन्तु इससे ग्रामीण समाज में स्वराज्य के बाद विकास को बढ़ावा देने के बारे में चेतना जरूर फैलने लगी।

तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने जन–जन को सत्ता में भागीदारी देने की पहल की। उन्होने पंचायती राज व्यवस्था के बारे में एक नई सोच के साथ कदम बढ़ाये। संसद में 64 वां संविधान संशोधन विधेयक (1989) पेश किया, परन्तु राज्यसभा में पारित न हो पाने के कारण यह विधेयक कानून का रूप नहीं ले सका। संविधान के 72 वें संशोधन विधेयक, 1992 द्वारा (जो 64 वें संशोधन विधेयक की संशोधित प्रति थी) पंचायती राज को शक्तिशाली बनाने के लिए फिर से क्रांतिकारी कदम उठाया गया। लोकसभा ने 72 वें संविधान संशोधन विधेयक की समीक्षा करने के लिए नाथूराम मिर्धा (सांसद–

नागौर) की अध्यक्षता में एक प्रवर समिति का गठन किया। समिति के संशोधित प्रतिवेदन के आधार पर 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा तथा अगले ही दिन राज्यसभा में इस विधेयक को 73 वें संविधान संशोधन के रूप में पारित कर दिया। आधे से अधिक राज्यों की सहमति के बाद 24 अप्रैल, 1993 को महामहिम राष्ट्रपति के हस्ताक्षर से यह विधेयक कानून के रूप में लागू हो गया। इस अधिनियम से मृतप्रायः पंचायती राज को नव जीवन मिला वहीं संवैधानिक मान्यता दिए जाने की वजह से इनका अस्तित्व भी सुरक्षित हो गया। इस संशोधन से सम्पूर्ण देश में पंचायती राज संस्थाओं में एकरूपता तथा प्रशासनिक अधिकार एवं वित्तीय संसाधनों की प्राप्ति सुनिश्चित हो पायी।

इस संशोधित अधिनियम में ग्रामीण विकास के लिए पंचायतों के त्रिस्तरीय व्यवस्था को आधार माना गया तथा पंचायतों का चुनाव प्रत्येक 5 वर्षों के बाद राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा सम्पन्न कराने का प्रावधान किया गया। संशोधित अधिनियम की महत्वपूर्ण बात यह है कि गांव, ब्लॉक तथा जिला तीनों स्तरों पर पंचायतों के प्रत्यक्ष चुनाव तथा ब्लॉक एवं जिला स्तरों के अध्यक्ष के चुनाव की अप्रत्यक्ष प्रणाली निश्चित करते हुए पंचायतों में जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए। साथ ही एक तिहाई स्थान सभी वर्गों की महिलाओं के लिए सुरक्षित करते हुए, पिछड़े वर्गो के लिए स्थान आरक्षित करने का अधिकार राज्य सरकार को दिया गया है। आरक्षण की प्रक्रिया चक्रानुक्रम (रोस्टर) के रूप में की गई ताकि बारी–बारी से समाज के हर तबके को इन संस्थाओं में भागीदारी मिल सके। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पंचायतो की आय के लिए राज्य वित आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। 11 वीं अनुसूची में 29 विषय पंचायतों को देकर इन संस्थाओं को ग्रामीण विकास का सशक्त आधार बनाने का कार्य इस अधिनियम द्वारा किया गया है। पंचायती राज व्यवस्था के विकास क्रम में समय–समय पर पंचायती राज सम्मेलनों तथा इस अधिनियम में संशोधन से यह संस्थाएं विकास की ओर अग्रसर होती जा रही है।

इस प्रकार से पंचायती राज संस्थाएं ग्राम विकास करते हुए गांवों की समृद्धि एवं समुन्नति का आधार साबित हो रही है। पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर गांवों में ही किया जा रहा है जिससे समय, श्रम, धन व ऊर्जा की बचत होती है। इन संस्थाओं के प्रभावी होने से ही गांवों में राजनीतिक चेतना, जागृति एवं सहभागिता का सूत्रपात हुआ तथा सदियों से समाज के विकास क्रम में पिछड़े हुए शोषित तबको को सत्ता में भागीदारी देने से उनमें नवीन शक्ति, सामर्थ्य व चेतना का संचार हुआ है। इन सब उपलब्धियों के बावजूद पंचायती राज व्यवस्था के क्रियान्वयन के स्तर पर अनेक खांमियां भी रही है। जिन्हें दूर करके इस व्यवस्था को और अधिक सशक्त, प्रभावी एवं सफल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

वस्तुतः पंचायती राज व्यवस्था ग्राम विकास के लिए आशा की किरण है। यह व्यवस्था वास्तविक अर्थो में तभी सफल व प्रभावी होगी जब गांवों में शिक्षा व साक्षरता की रोशनी फैलेगी, ग्रामीण जन संकीर्ण भावानाओं, तुच्छ स्वार्थो व दलगत राजनीति से ऊपर उठकर व्यापक सोच व चिन्तन को अपनाने हेतु ग्रामों के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान करेंगे। साथ ही, भ्रष्टाचार रूपी विषबेला को समूल उखाड़कर ही पंचायती राज संस्थाएं पूर्ण राजनैतिक कटिबद्धता, ईमानदारी व पारदर्शी ढ़ग से सम्पूर्ण ग्रामीण कार्यक्रमों के संचालन हेतु कटिबद्ध हो सकती है। ऐसा करके ही गांवों की धुंधली तस्वीर को चमका कर वास्तविक मायनों में एक भारत व श्रेष्ठ भारत तथा स्वच्छ भारत एवं स्वस्थ भारत की धारणा को मूर्त रूप प्रदान किया जाना सम्भव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गांधी, एम. के. (1962), ग्राम स्वराज्य, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस. अहमदाबाद*
2. *जार्ज, मैथ्यू (2000), पंचायती राज इन इण्डिया–एन ऑवर न्यू स्ट्टेस ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी. नई दिल्ली*
3. *जोशी, आर.पी. एण्ड मंगलानी, रूपा (2000), पंचायती राज के नवीन आयाम, यूनिवर्सिटी बुक हाऊस. जयपुर*
4. *डे, एस.के. (1961), पंचायती राज ए सिन्थेसिस, बम्बई पब्लिशिंग हाऊस. बम्बई*
5. *नरवानी, जी.एस. (2001), पंचायत प्रशासन क्या और कैसे? शंकाएं एवं समाधान, यूनिवर्सिटी बुक हाऊस (प्रा) लि. जयपुर*
6. *नारायण, इकबाल (1970), पंचायती राज एडमिनिस्ट्रेशनः ओल्ड एण्ड न्यू कन्ट्रोल, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन. नई दिल्ली*
7. *नारायण, जयप्रकाश (1961), स्वराज फॉर द पीपुल्स, ए.बी.एस.एस. वाराणसी*
8. *प्रसाद, राकेश. (2011), पंचायती राज इन एक्शन, अभिजीत पब्लिकेशंस. नई दिल्ली*
9. *बावेल, बसंतीलाल. (2000), वृहद राजस्थान पंचायती राज कोड, बाफना पब्लिकेशन (प्रा) लि. जयपुर*
10. *भास्कर, मनु (2008), वुमन एण्ड ग्रास रूट पॉलिटिक्सः थ्योरिटीकल इश्यू एण्ड सॉशियल कन्सेप्ट ऑफ केरला वुमन, कनिष्का पब्लिशर्स. नई दिल्ली*

पीरियोडिकल्स एण्ड जर्नल्स

11. *रॉय, माहेश्वरी (अप्रैल–दिसम्बर, 1997). सर्वोदय, स्वराज एण्ड पंचायती राज, आई.एस.डी.ए. जनरल, (2) पृ. 105–113*
12. *खत्री, राजकुमार (मार्च, 1998). द पीपुल्स ऑडिट इन पंचायती राज सिस्टम, जनरल ऑफ रूरल डेवलपमेंट, 17(1) पृ. 55–75.*
13. *महीपाल, (अप्रैल, 1998) पंचायत इन इलेक्शन मैनीफेस्टोजः ए कम्प्रेटिव एनालिसिस, मैनस्ट्रीम. 36(18) पृ. 23–25.*
14. *नरवानी, जी.एस. (जुलाई– दिसम्बर, 1998) एम्पलीमेंटेशन ऑफ पंचायती राज इन राजस्थान इन द लाइट ऑफ 73 वां कॉन्स्टीट्यूशनल एमेंडमेंट एक्ट, प्रशासनिका. 25 (2).पृ. 57–63*

15. *अधिकार्य,सी.डी. (2008) लोकल गवर्नमेंट पार्टिशिपेशन एण्ड फ्यूचर ऑफ नेशनल डेमोक्रेसी, ए क्रिटिकल लुक, आई.ए.एस.एस.आई. क्यूआट्रर्ली, 27 (1–2). 129–138*
16. *कौशिक, अनुपमा एण्ड शेखावत, गायत्री (अप्रैल–जून, 2010). वुमन पंचायती राज इन्स्टीट्यूशन इन चितौड़गढ़ जिला परिषद – ए केस स्टडी, ए जनरल ऑफ द ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेंट, 80 (02) पृ. 34–40*
17. *कुमार, संजय (सितम्बर, 2009). पेटरन ऑफ पॉलिटिकल पार्टिशिपेशनः ट्रेंडस एण्ड प्रेसपेटिव, इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 54 (39).पृ. 47–51*
18. *पालेकर, एस.ए. (जनवरी–मार्च,2009). द वर्किंग ऑफ पंचायती राज, एन एनालिसिस, द इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिट्रेशन, 55 (1) पृ. 126–137*
19. *शेखर, हिमांशु (अप्रैल, 2014). पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, कुरूक्षेत्र, 60 (05). पृ. 17–19*